बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 174

आगामी 100 दिन

नरेंद्र मोदी के दूसरे कार्यकाल की सरकार ने गत सप्ताह अपने 100 दिन पूरे किए। हालांकि सरकार ने अपने लिए कोई लक्ष्य तय नहीं किए लेकिन सरकार की दिशा और उसके समक्ष मौजूद नीतिगत चुनौतियों का आकलन करना अपने आप में अहम काम है। इसमें दो राय नहीं कि शुरुआती 100 दिनों में सरकार का सबसे बड़ा निर्णय था जम्मू कश्मीर को मिला विशेष संवैधानिक दर्जा समाप्त कर उसे दो केंद्रशासित प्रदेशों में बांटना। कश्मीर में हालात अब भी सामान्य नहीं हुए हैं और उस पर काफी ध्यान देना होगा लेकिन सरकार अगर आर्थिक मोर्चे पर बढ़ती चुनौतियों से ध्यान न हटाए तो बेहतर होगा। अगले 100 दिन अर्थव्यवस्था के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण होंगे।

चालू वित्त वर्ष की पहली तिमाही में अर्थव्यवस्था 5 फीसदी के साथ छह वर्ष के निचले स्तर पर पहुंच गई है। महंगाई से समायोजन के बगैर वृद्धि 17 वर्ष के निचले स्तर पर है। मंदी अपेक्षा से कहीं अधिक तेज है। आर्थिक गतिविधियां मंद पड़ गई हैं। इसका असर निवेशकों के विश्वास पर भी पड़ा है। सरकार को यह भरोसा पैदा करना होगा कि देश की विकास गाथा सही राह पर है।

हालांकि वैश्विक आर्थिक माहौल अनुकूल नहीं है और अमेरिका-चीन कारोबारी तनाव के कारण अनिश्चितता में इजाफा जारी रहेगा लेकिन भारत की समस्याएं घरेलू प्रकृति की हैं। इन्हीं वैश्विक हालात में कई अर्थव्यवस्थाएं हमसे तेज गति से विकसित हो रही हैं। पिछले दिनों सरकार ने मंदी की प्रतिक्रिया स्वरूप कई कदम उठाए हैं और आगे भी उठाने का वादा किया है। परंतु देश को व्यापक नीतिगत बदलाव की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए सरकार ने हाल ही में यह निर्णय लिया है कि वह सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का विलय करेगी। हालांकि यह स्पष्ट नहीं है कि इससे बैंक अधिक सक्षम कैसे होंगे। इसी प्रकार सरकार ने एकल ब्रांड खुदरा में विदेशी निवेश के नियम उदार किए हैं लेकिन वह बहुब्रांड खुदरा में दखल नहीं देना चाहती। कारोबारी मोर्चे पर भारत शुल्क वृद्धि और आयात प्रतिस्थापन को बढ़ावा देकर विपरीत दिशा में बढ़ रहा है। जैसा कि अर्थशास्त्री अमिता बत्रा ने हाल ही में समाचार पत्र में लिखा था, वैश्विक मूल्य शृंखला के साथ देश का एकीकरण इस समय जी 20 देशों में निचले स्तर पर है और इसमें लगातार गिरावट आ रही है। तेज आर्थिक वृद्धि ऐसे नहीं आएगी। यदाकदा कदम उठाने या किसी खास क्षेत्र के लिए वस्तु एवं सेवा कर की दरों में छेड़छाड़ करने से अर्थव्यवस्था को मदद नहीं मिलेगी। घरेलू और विदेशी निवेशक देख रहे हैं कि आने वाले सप्ताहों और महीनों में सरकार मंदी को लेकर कैसे प्रतिक्रिया देती है।

अगले 100 दिन समाप्त होने तक सरकार अगले बजट की तैयारी शुरू कर देगी। यदि निवेशकों का भरोसा नहीं बहाल हुआ तो अर्थव्यवस्था की दिक्कतें और बढ़ जाएंगी। मौजूदा हालात को देखें तो राजस्व संग्रह में उल्लेखनीय कमी आ सकती है और आरबीआई द्वारा अनुमान से अधिक स्थानांतरण के बावजूद सरकार को व्यय में कटौती करनी पड़ सकती है अथवा राजकोषीय घाटे का लक्ष्य पाने के लिए बैलेंस शीट से इतर उधारी लेनी होगी।

सरकारी वित्त का प्रबंधन एक अन्य क्षेत्र है जहां बड़े सुधार की आवश्यकता है। तभी पारदर्शिता लाई जा सकती है और भरोसा बहाल किया जा सकता है। सबसे बड़ी समस्या उपभोक्ताओं के भरोसे की है। उसे गहरा झटका लगा है। आने वाले दिनों में नीतिगत विचार प्रक्रिया में बदलाव नहीं आया तो यह खेद की बात होगी। देश में इस समय मजबूत बहुमत वाली स्थिर सरकार है और वह ऐसे बुनियादी बदलाव ला सकती है जो अर्थव्यवस्था को स्थायी उच्च विकास के पथ पर ले जा सकें।

अजय मोहंती

कमजोर पड़ा देश का सबसे सक्षम हथियार

आर्थिक पराभव देश के वैश्विक कद पर असर डाल रहा है। कश्मीर मसले पर अंतरराष्ट्रीय प्रतिक्रिया से यह जाहिर हो चुका है

राष्ट्र की बात

शेखर गुप्ता

देश इस समय बढ़ते रणनीतिक खतरे का सामना कर रहा है। यह खतरा नियंत्रण रेखा पर पाकिस्तान द्वारा नई ब्रिगेड तैनात करने या उसके किसी मिसाइल परीक्षण से जुड़ा नहीं है। न ही यह चीन द्वारा किसी तरह की नई घुसपैठ है।

यह खतरा तीन तरह का नहीं है। यह न तो सैन्य है, न ही यह हमारे पारंपरिक शत्रुओं की ओर से उत्पन्न हुआ है और न ही यह सीमा पार से आया है। इस नये खतरे से जुड़ी तीन बातें हैं: यह आर्थिक है, इसके कारण आंतरिक हैं और यह बीते दो दशक की सबसे बड़ी उपलब्धि को नष्ट कर सकता है जो है वैश्विक साख। मुंबई पर हुए आतंकी हमले के बाद विश्व स्तर पर हमारी छवि सुधरी है। इसमें हमारी स्थिरता और लोकतंत्र की भूमिका तो है ही लेकिन सबसे बड़ी भूमिका बढ़ती आर्थिक ताकत की है।

इसे ऐसे समझें कि जब अर्थव्यवस्था 8 फीसदी या अधिक की दर से बढ़ रही हो तो आपके सात खून माफ होते हैं, 7 फीसदी की दर पर आपके पांच खून माफ होते हैं लेकिन इसके 5 फीसदी से नीचे आते ही आपकी स्थिति बिगड़ जाती है। एक उभरती विश्व शक्ति, तीसरी दुनिया की नाकाम अर्थव्यवस्था में बदलने लगती है जिसकी प्रतिव्यक्ति आय 2,000 डॉलर सालाना है। ध्यान रहे श्रीलंका की प्रति व्यक्ति आय इससे दोगुनी है। सन 1991 में आर्थिक सुधार लागू होने के बाद 25 वर्षों में भारत दुनिया के पसंदीदा देश के रूप में उभरा। पश्चिम, पूर्व और पश्चिम एशिया में भारत की विशिष्ट सामाजिक-राजनीतिक भूमिका रही है। जब दुनिया के अन्य देश संघर्ष कर रहे हैं तब वह अपनी विविधता के साथ विकास कर रहा है, लोकतंत्र और सामरिक स्थिति ने उसके वैश्विक कद में इजाफा किया है। करगिल, ऑपरेशन पराक्रम और मुंबई हमलों के बाद दुनिया में मिला समर्थन इसका गवाह है।

इस बीच हमारी सबसे बड़ी ताकत आर्थिक थी। तेजी से विकसित होती दुनिया में भी भारत सबसे तेज बढ़ती अर्थव्यवस्था रहा और बढ़ती तकनीकी क्षमता, नवाचार, विदेशी पूंजी को लेकर अनुकूलता, स्थिर बाजार और कर व्यवस्था के कारण उसे वैश्विक पहचान मिली। 2008 के वित्तीय संकट से उबरने के लिए भी उसे सराहा गया। इस पूरी अवधि में उथलपुथल वाली दुनिया में भारत स्थिर गति से बढ़ता रहा। यह पोर्टफोलियो और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश का केंद्र बना रहा। चीन समेत सभी बड़े देश और उनकी कंपनियां भारत की स्थिरता और सुरक्षा में अपना हित देखती थीं। यही कारण है कि ऐसे समय में जबकि देश का सैन्य व्यय कम था और आधुनिकीकरण की गति में हम पीछे थे, फिर भी देश की अर्थव्यवस्था उसकी बड़ी ताकत बनी रही। बढ़ती जीडीपी, तमाम परमाणु हथियारों से अधिक शक्तिशाली थी। अगर कोई बड़ी ताकत आपके सॉवरिन या कॉर्पोरेट बॉन्ड में निवेश करती है तो वह नहीं चाहती कि उसका कोई कदम या नीति आपको अस्थिर करे। यहां तक कि चीन का 60 अरब डॉलर तक बढ़ता व्यापार अधिशेष भी काफी हद तक भारत पर निर्भर रहा।

वे भारत को ढेर सारी मशीनरी, बिजली उत्पादन उपकरण और इंजीनियरिंग वस्तुएं बेचते हैं लेकिन भला दुनिया का और कौन सा देश होगा जो अरबों डॉलर मूल्य की कम गुणवत्ता वाला चीनी कचरा खपा सके। खिलौने, चप्पल, फर्नीचर, पैरासोल, अगरबत्ती, प्लास्टिक की चूड़ियां आदि देश के मझोले शहरों और गांवों के बाजार में पटे पड़े हैं। चीन भारत की आयात क्षमता पर काफी हद तक निर्भर है और यह बात इसे एक सामरिक संपत्ति बनाती है। सन 1999 में करगिल, 2001-02 में संसद पर हमले, 2008 में मुंबई हमले के बाद जब-जब भारत और पाकिस्तान के बीच जंग जैसे हालात बने, तब तब चीन की प्रतिक्रिया अपेक्षाकृत मित्रवत रही। यहां तक कि 2009 में दलाई लामा की तवांग यात्रा को लेकर उपजे तनाव को भी शांति से निपटा लिया गया। मोदी सरकार के पहले कार्यकाल में काफी समय तक वृद्धि की गति बरकरार रही बल्कि 2012-14 के धीमेपन के बाद उसमें तेजी भी आई। भारत और नरेंद्र मोदी दोनों को इसका लाभ मिला। वैश्विक नेताओं के बीच उनका कद बढ़ा। परंतु नोटबंदी करके उन्होंने खुद इसे पलीता लगाया। तब से देश की अर्थव्यवस्था गिरावट पर है। बीती चार तिमाहियों में भारी गिरावट आई है और जल्द सुधार की कोई सूरत नहीं दिख रही। इसका असर भारत के वैश्विक कद पर पड़ रहा है। अनुच्छेद 370 हटाने पर आई प्रतिक्रियाएं इसकी गवाह हैं। यह सही है कि सन 1971 के युद्ध के बाद से यह पहला मौका था जब भारत ने इस कदर आक्रामकता दिखाई लेकिन हमारी छवि के पराभव का संकेत इससे पहले तब मिल चुका था जब डॉनल्ड ट्रंप ने इमरान खान की मौजूदगी में भारत-पाकिस्तान के बीच मध्यस्थता की पेशकश की।

ट्रंप तो ट्रंप ही हैं लेकिन अगर भारत की अर्थव्यवस्था पहले की तरह दमदार होती, अमेरिकी कंपनियां भारत में निवेश कर रही होतीं और मुनाफा कमा रही होतीं तो शायद ऐसा नहीं होता। इसके बजाय वॉलमार्ट, एमेजॉन, दवा निर्माता कंपनियां आदि सभी उनके पास जाकर भारत के कराधान और अन्य नीतियों में अचानक बदलाव की दुहाई दे रही थीं।

ब्रिटेन की कमजोर टोरी सरकार कश्मीर मसले पर भारत से झिड़कते हुए बात कर रही है। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भी उसका व्यवहार अनुकूल नहीं है। टोली ब्लेयर की लेबर पार्टी की सरकार ने भी अतीत में तेजी के दौर में भारत के प्रति गहरी आस्था दिखाई। 2002 और 2012 के बीच ब्रिटेन के प्रधानमंत्री ने छह बार भारत की यात्रा की। टाटा द्वारा जगुआर लैंड रोवर और कोरस कंपनियों को 14.3 अरब डॉलर में खरीदने और ब्रिटेन में सबसे बड़े निजी नियोक्ता बन जाने के बाद ब्रिटेन के हर दल द्वारा भारत को तवज्जो देना लाजिमी था।

तमाम विश्लेषण काल्पनिक हैं लेकिन इन्हें केवल इसलिए नहीं नकारा जा सकता है कि ये आपको पसंद नहीं हैं, जबकि वे तथ्यात्मक हों। जब ट्रंप संवाददाता सम्मेलन में इमरान के साथ आए तो उनके दिमाग में भारत सामरिक साझेदार के रूप में नहीं बल्कि एक खिझाने वाले व्यापारिक प्रतिद्वंद्वी के रूप में था। सामरिक मोर्चे पर देखें तो वह चीन को नाराज नहीं करना चाहते थे क्योंकि अफगानिस्तान में उसके हित अमेरिका से जुड़े हैं। गत माह फ्रांस के ब्यारिट्ज में कुछ प्रगति हुई और एक नया व्यापार समझौता चीजें बेहतर कर सकता है। मोदी और ट्रंप से अधिक निगाहें वाणिज्य मंत्री पीयूष गोयल और अमेरिकी वाणिज्य मंत्री रॉबर्ट लाइट हाइजर की मुलाकात पर होंगी। अगर इससे कुछ शांति बहाल हुई और समाधान निकाला तो अर्थव्यवस्था को नया नीतिगत हथियार बताने की हमारी बात सही साबित होगी। कश्मीर में आज हालात खराब दिख रहे हैं लेकिन ये सबसे खराब नहीं है। हम अपना हालिया अतीत भूल गए हैं, खासकर गूगल के पहले का समय। सन 1991-94 में घाटी के हालात सबसे अधिक खराब थे। प्रताड़ना केंद्र उभर आए थे, विदेशी पत्रकारों के जाने पर रोक थी, मुठभेड़ में मौतें सामान्य थीं। पंजाब में भी आग लगी हुई थी और रोज कई हत्याएं होती थीं। उस वक्त अंतरराष्ट्रीय प्रतिक्रिया भी नाराजगी भरी थी और भारत का कोई मित्र नहीं था। इकलौता साझेदार सोवियत संघ बिखर चुका था। बिल क्लिंटन के नेतृत्व वाला अमेरिकी प्रशासन परमाणु अप्रसार लॉबी के दबाव में लगातार भारत पर हमलावर था। अमेरिका में ऐसा कोई आयोजन नहीं होता था जहां भारतीय कूटनयिकों को कश्मीर में हत्याओं, बलात्कार और सैन्य घटनाक्रम के आरोप न झेलने पड़ते हों। विश्व स्तर पर अकेले पड़ चुके पीवी नरसिंह राव देश में पूरी निर्ममता से इन सबसे जूझ रहे थे। भाजपा समय आने पर उन्हें भारत रत्न देगी, उस वक्त कृपया मुझे याद दिलाएं कि मैंने यह बात कही थी। वह शायद उनको इस सबसे बड़ी उपलब्धि के लिए नहीं दिया जाएगा जिसने दिखाया कि शीतयुद्ध के बाद के दौर में अर्थव्यवस्था सबसे बड़ी संपत्ति है। उन्होंने आर्थिक सुधार लागू किए और बाजार, जीडीपी और व्यापार में प्रगति के साथ ही हमारे कई मित्र उभर आए। क्लिंटन के पहले और दूसरे कार्यकाल में फर्क पर गौर कीजिए। पहले कार्यकाल में सहायक विदेश मंत्री रॉबिन राफेल ने कश्मीर के भारत में विलय पर ही सवाल उठा दिया था जबकि दूसरे कार्यकाल में क्लिंटन ने कहा था कि उपमहाद्वीप में देशों की सीमाएं रक्त से नहीं बदली जा सकतीं। अगर एक तेज विकसित होती अर्थव्यवस्था सन 1990 के दशक में सामरिक संपत्ति थी तो 2019 में धीमी अर्थव्यवस्था अवश्य बोझ मानी जाएगी।

सुस्ती के समय नेतृत्व के पास सही दिशा देने की चुनौती

इंसानी पहलू

श्यामल मजूमदार

खासकर व्यापार में घाटे के दौरान नेतृत्व के समक्ष कई चुनौतियां खड़ी हो जाती हैं। आर्थिक संकट के उस पहलू पर बेहद कम चर्चा होती है जो कर्मचारियों की बड़ी संख्या पर संकट का मनोवैज्ञानिक दुष्प्रभाव उजागर करता है। प्रबंधन विशेषज्ञ इसे मनोवैज्ञानिक मंदी का नाम देते हैं जो कर्मचारियों के बीच पनपने वाला आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक असुरक्षा बोध है। उन्हें यह भी लगने लगता है कि नियोक्ता को उनकी कोई फिक्र नहीं है। दुनिया भर में हुए अध्ययनों से ऐसे साक्ष्य मिले हैं कि आर्थिक सुस्ती का कार्यबल पर खासा प्रतिकूल मनोवैज्ञानिक असर होता है। दरअसल उन्हें बेरोजगार होने, अधिक काम करने और वेतन में कटौती का डर होता है जिससे उनके भीतर घबराहट एवं अवसाद पनपने लगता है। आम दिनों में भी ऐसी आशंकाओं की भारी कीमत चुकानी पड़ सकती है और सुस्ती के दिनों में तो ऐसी व्याकुलता एक औसत कर्मचारी के दिन का एक तिहाई वक्त ले लेती है जिससे उत्पादकता भी घट जाती है।

यहीं पर सच्चे नेतृत्व की भूमिका शुरू होती है। काबिल नेता यह सुनिश्चित करेंगे कि वे एक ऐसा माहौल बनाएं जिसमें लोग निराशा के भंवर से बाहर निकलें और अपनी बेचैनी को सही दिशा देकर परिणाम देना शुरू करें। इसके लिए कर्मचारियों के साथ संपर्क बढ़ाने की जरूरत होती है, खासकर ऐसी प्रतिभाएं जिन्हें कंपनी के साथ जोड़े रखना जरूरी है।

अगर हम इतिहास से सबक लें तो यही कहा जा सकता है कि कई कंपनियां बहुत कम और बहुत देर से तथा बहुत रक्षात्मक होकर सुस्ती के मनोवैज्ञानिक पहलुओं से निपटने की तैयारी करती हैं। तमाम कर्मचारी कहते हैं कि उनकी कंपनी पर पड़ने वाले सुस्ती के असर को लेकर उन्हें अपने वरिष्ठों से बहुत कम मौकों पर ही सुनने को मिलता है। इससे हानिकारक अफवाहें पैदा होती हैं जिससे किसी को भी फायदा नहीं होता है। सुस्ती के दौरान कुछ कर्मचारियों की छंटनी अपरिहार्य हो जाती है लेकिन अगर इस काम को इस तरह अंजाम दिया जाए कि कंपनी में बचे रह जाने वाले कर्मचारियों को यह लगे कि हटाए जाने वाले लोगों के साथ सही बरताव किया गया है तो यह पीड़ा थोड़ी कम हो सकती है।

हालांकि महान नेता संक्षिप्त अवधि के साथ दीर्घावधि नजरिये से भी काम करना जारी रखते हैं और कर्मचारियों के साथ-साथ नतीजों पर भी अपना ध्यान बनाए रखते हैं ताकि कंपनी को मंदी से उबरने के लिए तैयार किया जा सके। उनका ध्यान बड़े ग्राहकों के बीच अपनी निष्ठा बनाए रखने पर होता है। हुंडई का एश्योरेंस प्रोग्राम इसका एक बढ़िया उदाहरण है जिसमें ग्राहकों को यह सुविधा दी गई थी कि नौकरी छूट जाने पर वे कार को वापस लौटा सकते हैं।

संकट के दौरान नेतृत्व का एक चर्चित उदाहरण हनीवेल है जिसे वर्ष 2008 में आई भीषण मंदी में तीव्र गिरावट का सामना करना पड़ा था। अतिरिक्त सक्षमता वृद्धि के जरिये लागत कम करने की गुंजाइश काफी रह गई थी और कंपनी के मुख्य कार्याधिकारी (सीईओ) डेव कोटे के समक्ष एक कार्यबल यह प्रस्ताव रखने वाला था कि कर्मचारियों की लागत में किस तरह कटौती की जाए? भले ही उस समय छंटनी सबसे स्वाभाविक विकल्प नजर आ रही थी लेकिन कोटे ने 'फरलो' (अस्थायी बिना भुगतान वाली छुट्टी) का विकल्प चुना। उनका मानना था कि मंदी हमेशा नहीं रहेगी। इससे हनीवेल के कर्मचारियों के भीतर यह भाव जगा कि 'हम संकट में एक साथ हैं।' उसे इसका बढ़िया प्रतिदान मिला क्योंकि हनीवेल अपने निष्ठावान कर्मचारियों की सेना के साथ वृद्धि पथ पर आगे बढ़ने को तैयार थी। ऐपल जैसी कंपनियों की कामयाबी की एक वजह यह है कि उन्होंने अग्र-सक्रिय होने के बजाय प्रतिक्रियावादी कदम उठाना बेहतर समझा। मसलन, ऐपल ने अपना पहला आईपॉड वर्ष 2001 में बिक्री के लिए उतारा था जबकि अमेरिकी अर्थव्यवस्था उस समय सुस्ती के दौर से गुजर रही थी और कंपनी के कुल राजस्व में भी भारी गिरावट देखी गई। लेकिन ऐपल के दीर्घावधि लक्ष्यों ने उसे लगातार नवाचार और शोध पर खर्च बढ़ाकर अपने उत्पाद पोर्टफोलियो का कायाकल्प करने के लिए निवेश जारी रखने को प्रेरित किया। इन रणनीतिक दांवों ने ही ऐपल को आज इस मुकाम तक पहुंचाया है।

वर्ष 2007-08 के वित्तीय संकट के बाद फोर्ड का नाटकीय रूप से हुआ कायांतरण भी केवल एक व्यक्ति के ही नाते हो पाया था। एलन मुलाली ने सितंबर 2006 में जब फोर्ड के सीईओ बने थे तो यही लग रहा था कि 12.7 अरब डॉलर के भारी घाटे में चल रही इस ऑटो कंपनी को दिवालिया घोषित होने की प्रक्रिया शुरू करनी पड़ेगी। लेकिन वर्ष 2014 में मुलाली के सेवानिवृत्त होने के समय तक फोर्ड का पूरा कायाकल्प हो चुका था।

मुलाली को जल्द ही यह अहसास हो गया था कि फोर्ड की जहरीली एवं मर्दाना संस्कृति बाहरी लोगों के प्रति कठोर थी और उसमें अपने ग्राहकों को भी भुला दिया गया था। उसकी गाड़ियां पुराने दौर की हो चुकी थीं और नए दौर में उनके खरीदार कम ही रह गए थे। इन सबके ऊपर, कंपनी के पास पैसे की भी किल्लत थी। ऐसे समय में मुलाली ने अपनी योजना के केंद्र में लोगों को रखा। इस सोच ने 'वन फोर्ड' का नजरिया सामने रखा जिसने आपूर्तिकर्ताओं, उपभोक्ताओं और श्रमिक संगठनों को भी साझेदार के तौर पर जोड़ने की बात की। उन्होंने पहले से चली आ रही समस्याओं के खात्मे के लिए 'वन टीम' बनाई और अपने दृष्टिकोण से तालमेल रखने वाला एक सरलीकृत नेतृत्व ढांचा भी खड़ा किया। इस पूरी कवायद का मकसद यह था कि कंपनी के तमाम कर्मचारी एक वैश्विक टीम के तौर पर मिलकर काम करें। मुलाली ने अपने एक साक्षात्कार में संकटकाल की अपनी रणनीति को कुछ इस तरह पेश किया था, 'हम सभी यह जानना चाहते हैं कि हम कोई बड़ा काम कर रहे हैं, हम तमाम लोगों को प्रभावित कर रहे हैं और हम जो कुछ भी कर रहे हैं वह हम लोगों से कहीं बड़ा है।' एक साथ खड़े होने का यह भाव जगा पाने वाला कोई भी नेता विजेता साबित होगा।

कानाफूसी

पवार का गुस्सा

राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के नेता शरद पवार के बारे में कहा जाता है कि वह कभी अपना आपा नहीं खोते हैं लेकिन जब खोते हैं तो शायद बहुत बुरी तरह लेकिन बिना अपनी आवाज ऊंची किए। हाल ही में एक संवाददाता सम्मेलन में एक संवाददाता ने उनसे पूछा कि न केवल राकांपा के नेता बल्कि उनके रिश्तेदार भी पार्टी छोड़कर भारतीय जनता पार्टी में शामिल हो रहे हैं, इस पर उनका क्या कहना है? इस पर नाराज पवार ने पूछा कि उनके रिश्तेदारों के बारे में उनसे सवाल क्यों किया जा रहा है। उन्होंने कहा कि वह राजनीति के बारे में चर्चा कर सकते हैं लेकिन उनके पारिवारिक रिश्ते इसमें कैसे आते हैं? जब संवाददाता ने अपना सवाल दोहराया तो पवार जाने के लिए उठ खड़े हुए। उन्होंने रुकने की गुजारिश कर रहे आयोजकों से कहा कि अगली बार ऐसे संवाददाताओं को बुलाएं जो थोड़ा ज्यादा विवेकवान हों। वह यहीं नहीं रुके। उन्होंने आगे कहा कि वह ऐसा वक्त भी देख चुके हैं जब विधानसभा में उनके 60 विधायकों में से 52 पार्टी छोड़कर चले गए। उन्होंने कहा कि वे गए लेकिन वापस भी आए, यह राजनीति है। संवाददाता फिर भी नहीं माना तो पवार दोबारा उठे। उन्होंने हाथ जोड़कर पत्रकार से कहा कि वह चला जाए क्योंकि वह बहस का स्तर गिरा रहा है। इसके बाद उन्होंने नेताओं के पार्टी छोड़ने के विषय पर आगे और बात रखी।

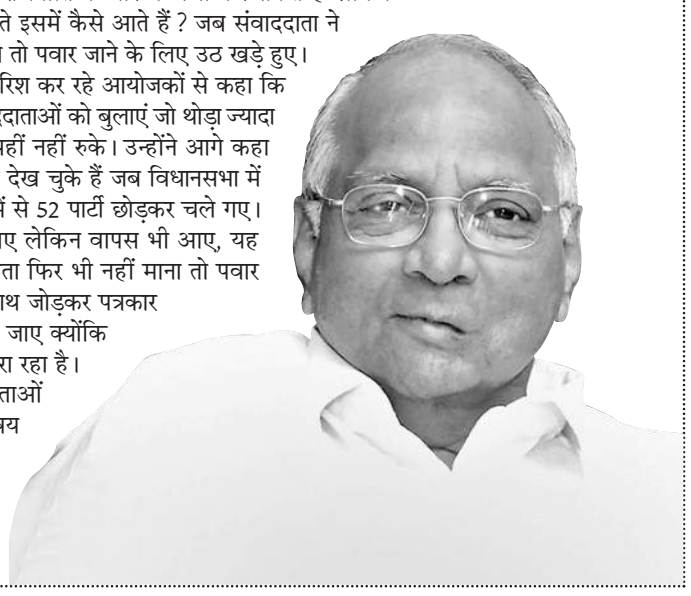

आपका पक्ष

प्रदूषण जांच केंद्र पर भारी भीड़

यातायात नियमों के उल्लंघन करने पर भारी जुर्माने के प्रावधान ने लोगों को नियम कायदे मानने को मजबूर किया है। प्रदूषण प्रमाणपत्र नहीं होने पर पहले के मुकाबले अधिक जुर्माना लगाए जाने पर लोगों की भीड़ प्रदूषण जांच केंद्र पर उमड़ पड़ी है। प्रदूषण जांच केंद्र पर वाहनों की लंबी कतार देखी जा रही है। इसे देखकर सरकार ने प्रदूषण जांच केंद्र रात 10 बजे तक खुले रखने का निर्देश दिया है जिससे लोग प्रमाणपत्र बना सकें। बहरहाल जांच केंद्र में उमड़ी भीड़ इस बात की सबूत पेश करती है कि लोग बिना प्रदूषण प्रमाणपत्र के वाहन चला रहे थे। हालांकि बगैर प्रमाणपत्र चलने वाले वाहन कितना प्रदूषण छोड़ते हैं यह कहना तो मुश्किल है लेकिन प्रदूषण बढ़ने का यह भी एक कारण है। देश की राजधानी दिल्ली में अन्य शहरों के मुकाबले प्रदूषण अधिक है। राष्ट्रीय हरित अधिकरण (एनजीटी) प्रदूषण के खिलाफ सख्ती बरतता है और

सरकार द्वारा यातायात नियमों के उल्लंघन करने पर जुर्माने की राशि बढ़ाई गई है

खासकर दिल्ली में प्रदूषण का स्तर बढ़ने पर कई आदेश भी जारी करता है। दिल्ली में प्रदूषण का स्तर बढ़ने में ऐसे वाहनों की भी भूमिका अधिक रहती है जो बगैर प्रदूषण प्रमाणपत्र के सड़कों पर दौड़ते हैं। आज भी ऐसे कई वाहन सड़कों पर दिख जाते हैं जिनसे काफी मात्रा में काला धुआं निकलता है। ऐसे वाहनों को यातायात पुलिस द्वारा जब्त किया जाना चाहिए। हालांकि सरकार द्वारा यातायात नियम तोड़ने पर लगाए गए भारी जुर्माने से अब लोग नियम तोड़ने से बच रहे हैं। यह एक सराहनीय कदम है और लोगों को स्वयं भी नियम नहीं तोड़ना चाहिए।

आकृति सिंह, नई दिल्ली

उद्यम और सरकार के बीच सामंजस्य

अर्थव्यवस्था और बाजार उपायों से कहीं ज्यादा विश्वास और भावनाओं पर चलती है। वित्तीय और गैर वित्तीय संस्थाएं पर्याप्त नकदी तरलता के संकट से जूझ रही हैं। वहीं निवेशक रोजगार और वित्तीय सुरक्षा के लिए चिंतित हैं। कर में राहत प्रदान करने की कोशिश अधूरी है क्योंकि घरेलू और विदेशी पोर्टफोलियो निवेशकों पर लगाया गया अधिभार केवल पूंजीगत मुनाफे से हटाया गया है, न कि वायदा बाजार के कारोबार से हटाया गया है। कई क्षेत्र जैसे ऑटो और उसके कलपुर्जों से संबंधित उद्योग, कपड़ा मिल, गैर वित्तीय संस्थाएं, बिस्कुट निर्माण उद्योग मंदी के मुहाने पर खड़े हैं। कहने को केवल कुछ ही क्षेत्र हैं लेकिन अर्थव्यवस्था के निर्माण में इन सबका भी अहम योगदान है और आपस में एक दूसरे पर आश्रित हैं। बैंकिंग क्षेत्र को 70,000 करोड़ रुपये मिलने से 5 लाख करोड़ रुपये तक की तरलता बनेगी लेकिन अर्थव्यवस्था में मांग में कमी है। यह सराहनीय है कि बैंकिंग क्षेत्र को बिना किसी डर के ऋण आवंटन निर्णय लेने का अधिकार दिया गया है। साथ ही बैंक की आंतरिक समिति को निर्णय लेने का अधिकार भी दिया गया है कि कौन से मामले की जांच होगी। जीएसटी लागू होने के बाद से ही कारोबारियों की कार्यशील पूंजी की हमेशा तकलीफ रही है क्योंकि कर प्रतिदाय अभी भी लंबित है। ऐसे में मुनाफे के अंतर पर भी प्रतिकूल प्रभाव रहा है। व्यवसाय, उद्यमी, निवेशकों और उपभोक्ताओं और हर संस्थाओं और सरकार के बीच सामंजस्य अर्थव्यवस्था को अधिक मजबूत और विश्वास से भर सकता है।

गौतम कुमार, नई दिल्ली

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।